गंगापुत्रावदानम् में वर्णित शिक्षा व्यवस्था

भूपेन्द्र कुमार*

सारांश

शिक्षा शब्द 'शिक्षा विद्योपादाने' अर्थ में शिक्ष् धातु से 'अ' एवं 'टाप्' प्रत्यय संयुक्त करके निष्पन्न हुआ है और इसका अर्थ है शिक्ष्यते विद्योपादीयतेऽनयेति शिक्षा, अर्थात् जिस प्रणाली से विद्यार्थी विद्या प्राप्त करता है, उसे शिक्षा कहते हैं। शिक्षा के द्वारा विद्या प्राप्त करने से अमृतत्त्व की प्राप्ति होती है–

''अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते[1]।''

आधुनिकता पर आधारित 'गंगापुत्रावदानम्' प्राचीन शिक्षा व्यवस्था को दर्शाता है। गुरु और शिष्य का सम्बन्ध कैसा हो यह तो प्राचीन वैदिक पद्धति में हम पढ़ते ही आये हैं इसके साथ ही सम्प्रति गुरु और शिष्य का सम्बन्ध कैसा हो यह महाकाव्य इसको दर्शाता है। बाल्यावस्था में शिशु शिक्षाग्रहण करने के लिये बहुत उत्सुक होता है उसे यह लगता है कि हम जल्दी से ही जल्दी सब कुछ जान लें ऐसी उत्सुकता लगभग सभी बच्चों में समान रूप से होती है। इस महाकाव्य के नायक जो कि निगमानन्द सरस्वती है इनके बचपन का नाम स्वरूपम है। स्वरूपम नवीन वस्त्र धारण करके नवीन तत्वों को जानने के लिये बहुत उत्सुक था लेकिन धनागम की प्रार्थना से ही जहाँ शिक्षण होता है। ऐसा शिक्षण स्वरूपम को ठीक नहीं लगा और स्वयं तर्कवर्कश स्वरूपम इस नवीन मार्ग के ग्रहण से पराङ्मुख हो गया। इससे यह भी विदित होता है कि समाज में अधिकांशतः धनागम से ही विद्या अर्जित की जाती है और यह सत्य भी है जिसे महाकाव्य के नायक ने स्वीकार किया।

मुख्य शब्द– पुत्रावदानम्, निगमानन्द, गुरोर्गुरूत्वं, विलासपाटवं, पूज्यन्ते, ब्रह्मवादिनी।

प्रस्तावना

आधुनिकता पर आधारित 'गंगापुत्रावदानम्' में स्वरूपम का मानना है कि जिस गुरु को शिष्य की चिन्ता न हो ऐसे गुरु से क्या लाभ और जो गुरु के प्रति श्रद्धाभाव से रहित हो ऐसे शिष्य से क्या लाभ?

स्वशिष्यभावान्न पराङ्मुखोऽस्म्यहं
गुरोर्गरुत्वं हि परीक्षयामि भो!
शिशुत्वभावाद्विमुखेन किं गुरो
गुरुत्वभावाद्रहितेन किं शिशोः[2]।।

स्वरूपम का मानना है कि समस्त भाव को रखकर जो दिन–रात अपने शिष्यों को अतत्त्व के मूल का नाश करने के लिये प्रेरित करता हो, जिसके मन में कभी भी धनिक और निर्धन के बीच पार्थक्य बोध न हो वही गुरु है–

समत्वमादाय करोति योऽनिशं
अतत्त्वमूलाहरणाय चोद्यतम्।।
गुरुः स एवास्ति न यस्य मानसे
पृथक्त्वबीजं धनिके च निर्धने[3]।।

महाकाव्य में स्वरूपम ने बताया है कि आज के सुन्दर शिक्षण में अपनी संस्कृति का प्रेम भी कहाँ है। अर्थात् संस्कारहीन लोगों का सुशिक्षण सम्भव नहीं है, और जो शिक्षण आज सुशिक्षण कहला रहा है उसमें अपनी संस्कृति का प्रेम नहीं है। कहने का भाव यह है कि जो शिक्षण विधि चल रही है उसे स्वरूपम ने ठीक नहीं बताया अर्थात् शिक्षण विधि जंची नहीं उसे यह बेकार मालूम होने लगा। इस तरह से उसका मन इस नवीन पढ़ाई से विरत होने लगा। स्वरूपम कहता है कि संस्कृत के महान कवि भारवि ने यह कहा कि हितकारी और मनोहर वचन दुर्लभ है तथापि अपने शिष्य का प्रिय चाहने वाला गुरु केवल मनोहर वचन के बन्धन में क्यों रहता है तात्पर्य यह है कि जो मनोहर वचन है वह हितकारी नहीं होता। गुरु को अपने शिष्य का हित करना चाहिए। अतः मनोहर वचन की आवश्यकता नहीं है तथापि गुरु मनोहर वचन में ही क्यों लगा रहता है। यह बड़ा आश्चर्य है। स्वरूपम एक अच्छे गुरु की तलाश कर रहा था कि उसे इसी तरह घूमते हुए कभी किसी सामान्य रूप वाले सर्वदा प्रसन्न आलोक सामान्य गुण प्रकर्ष से युक्त युवाव्रती को देखा उस युवाव्रती ने आये हुये स्वरूपम को

* शोधार्थी, संस्कृत विभाग, डी0एस0बी0 परिसर, कुमाऊँ वि0वि0 नैनीताल, उत्तराखण्ड

मन्द–मन्द हँसते हुए स्वरूपम से कहा है कि अये लोककलाविलासिन्! यहाँ आने का कारण क्या है? तुम्हारी कोई घनी चिन्ता क्यों बढ़ती जा रही है? स्वरूपम ने कहा अयि विज्ञ! आपको देखने के बाद मेरे मन में क्या हुआ यह तो मैं स्वयं नहीं जानता, परन्तु इतना जानता हूँ कि मुझे आपके द्वारा ही रमणीय तत्त्व मिलने वाला है क्योंकि मैंने सुना है कि गुरु पाद भक्ति शिष्यों के विघ्नों को निश्चित रूप से दूर करती है। सदैव शंका से घिरा भी शिष्य बिना उपदेश के ही निश्शंकता को प्राप्त कर लेता है। बिना गुरु के कभी कोई शिष्य मनसेप्सित लाभ को नहीं पाता है और यह भी जानता हूँ कि पूर्वार्जित पुण्य के योग के बिना कोई भी शिष्य गुरुपाद भक्ति नहीं पाता है–

बिना गुरुं नात्र कदापि शिष्यः
करोति लाभं मनसेप्सितानाम्।
जानामि पूर्वार्जितपुण्ययोगे–
नाप्नोति कश्चिद् गुरुपादभक्तिम्[4]।।

स्वरूपम पर गुरु की विशेष प्रीति हो गयी। इस प्रकार अज्ञात कारणों से ही गुरु और शिष्य परम सन्तुष्ट हो गये। गुरु के साथ जाकर स्वरूपम ने केदारनाथ का दर्शन किया। केदारनाथ से लौटते समय गुरु ने जब यह कहा कि जाकर देखों जो भूल गये वह क्या है और कहाँ है? स्वरूपम जाकर गुरु का यह कार्य करता तब तक कोई और शिष्य गुरु का सामान उठाकर चल रहा था। यह देखकर स्वरूपम सोच में पड़ गया कि निश्चित ही मेरा कोई पाप है जिसके कारण मैं गुरु सेवा में विरत हो गया। गुरु यह जानकर बहुत प्रसन्न हुये इसके बाद स्वरूपम गुरु के साथ बदरीश दर्शन के लिये गया। गुरु अपने शिष्य को केदारनाथ और बद्रीनाथ धाम का भ्रमण करा रहे हैं। स्वरूपम बस से यात्रा कर रहा था उसने भागीरथी और अलकनन्दा के संगम देवप्रयाग नामक रमणीय तीर्थों को देखा आगे चलते हुये श्रीनगर तक पहुँच गये। इसके बाद स्वरूपम रूद्रप्रयाग से होते हुये कर्णप्रयाग, नन्दप्रयाग और अत्युच्च शैल शीर्ष पर रमणीय भूमि पर स्थित ज्योतिर्मठ जो आचार्य शंकर द्वारा स्थापित है वहाँ पहुँचा। इसके बाद निगमानन्द या स्वरूपम बदरीश की भूमि पर अपने वाहन से उतरा तथा गुरु के आदेश से शीघ्र सोने चला गया परन्तु उसे जल्दी नींद नहीं आयी। प्रातःकाल बदरीनाथ की आराधना कर मनोविकारों से मुक्ति पाकर परमशान्तवृत्ति स्वरूपम ने गुरु की आज्ञा लेकर अपने मित्रों के साथ वहाँ के अन्यत्र विशिष्ट स्थानों को देखा। स्वरूपम ने उस गाँव को भी देखा जिसका नाम माना था यह माना गाँव भारतभूमि का सीमान्त गाँव है जो इस ब्रह्माण्डभाण्ड के प्रथम अधिपति महाराज मनु की राजधानी थी।

इस प्रकार स्वरूपम गुरु की चरण वन्दना में लगा हुआ उसे अपने घर की कोई चिन्ता नहीं थी बल्कि घर वालों की स्वरूपम की बहुत चिन्ता थी। लेकिन आज के समय में वैदिककालीन गुरु मिल जायेंगे। ऐसा घरवाले नहीं सोच रहे थे जिस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था वैदिककाल में थी। उसी प्रकार से आज भी स्वरूपम अपने गुरुजी से दीक्षा ले रहा था। पुत्र मोह तो माता और पिता दोनों को होता है जब उसका मित्र घर पहुँच गया और स्वरूपम घर नहीं पहुँचा तब माता और पिता की चिन्ता बहुत बढ़ गयी। उसी क्षण पड़ोसियों के मुख से अपने पुत्र के आगमन का वृत्तान्त माता ने घर में सुना। पिता ने स्वरूपम से कहा कि तुम्हारे हित के लिये मैं सदा श्रम करता हूँ। धन कहीं पेड़ में नहीं फलता है। धन पाकर यदि तुम्हारी मति मूढ़ हो जाती है तो स्थित होकर घर में रहो, स्वरूपम ने कहा कि परमतत्त्व को प्राप्त कर जो सुख प्राप्त होता है वह सुख कभी भी धन कमाने की चिन्ता से नहीं होता। स्वरूपम के पिता को आभास हुआ कि यह निश्चित ही संन्यासी हो जायेगा इसलिए स्वरूपम से कहा कि तुम जहाँ पढ़ते हो वहाँ से प्रमाण पत्र ले आओ और दूसरे विद्यालय में पढ़ाई करोगे। स्वरूपम कहता है कि यह पाशबन्धन और मुक्ति सब विधि के इशारे हैं क्योंकि घरवालों ने दिल्ली से हटाकर घर में नियमित कर दिया।

आज पुनः अकेला दिल्ली भेज दिया। स्वरूपम अपने विद्यालय से प्रमाण पत्र लेकर निकला तब उसकी मुलाकात निखिलेश्वर से हुई श्रीकृष्ण के मानसकमल के परागों से पीत हुई, धन के उदरस्थ सौदामिनी की तरह वृषभानुसुता जहाँ सर्वदा हासपूर्णा थी उस गाँव में स्वरूपम निखिल के साथ गया। जहाँ गुरु की आज्ञा ही। वेदवाक्य के समान थी जीवन का लक्ष्य गुरु की सेवा थी भिक्षाटन में ही त्रिभुवनाधिप के राज्य भोग का आनन्द था, भूमि पर बहुमूल्य शय्या पर सोने का आनन्द मिलता था। भिक्षाटन में भी नियत स्थिति थी। नित्य दो या तीन घर ही भिक्षाटन के लिये नियत थे। उन्हीं घरों से प्राप्त वस्तु ही जीवनरक्षण के लिये पाकर सन्तुष्ट मन से सभी आनन्द पाते थे। यहाँ पर भी शिक्षा व्यवस्था जो वैदिककालीन थी वह समान रूप से दिखायी देती है। जीवन यापन हेतु भिक्षाटन ही प्रमुख था। इक्कीसवें सर्ग में गुरुवर अपने आश्रम में रसालकुंजों में (बैठे हुये) अपने शिष्यों को ब्रह्माण्डभाण्ड के गूढ़ रहस्यों को समझाते हुये अपना भाव अभिव्यक्त कर रहे हैं कि जो गूढ़ तत्व श्रुति स्मृतियों के द्वारा प्रतिपादित है उस गूढ़तत्त्वों को सुशिष्य अपने गुरु से स्वल्प–श्रम से ही प्राप्त कर लेता है। वस्तुतः इस धरती पर गुरु की समता कोई नहीं पा सकता।

न भौतिकाख्यानविलासपाटवं,
गुरुत्वमासादयितुं फलान्वितम्....[5] ।।

इस प्रकार सुन्दर शिष्यों में वन्दनीय निगमानन्द अपने गुरु को देखकर विशाल आत्मा वाला सभी संशयों से रहित हो गया। गंगापुत्रावदानम् में वर्णित शिक्षा व्यवस्था वैदिककालीन शिक्षा व्यवस्था के ही समान दिखाई देती है। चाहे कितनी भी पिछड़ी मानव जाति हो उसके लिये भी पूर्वजों द्वारा अर्जित ज्ञान और अनुभव को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में पहुँचाना आवश्यक होता है जिसके वास्ते उसे किसी न किसी तरह की शिक्षा प्रणाली अपनानी पड़ती है। वैदिककालीन शिक्षा गुरुकुलों में होती थी। छात्र गुरुकुल में रहकर ही अध्ययन करते थे गुरुजी सभी को जमीन पर बिठाकर एक साथ पढ़ाते थे। आज वैदिकालीन शिक्षा को पूर्णतया न अपनाकर मध्य–मध्य में एक आदि स्थान पर आश्रम खुले हैं उन आश्रमों में आज भी उसी के समान शिक्षा चलती है।

गंगापुत्रावदानम् महाकाव्य में वैदिककालीन शिक्षा की तरह ही दिखाया गया है। मातृसदन आश्रम में शिष्यों को शिक्षा दी जाती थी। इस मातृसदन आश्रम से दिव्य सन्देश नाम की एक सुन्दर पत्रिका में श्री गुरुदेव का सम्बोधन सत्त्व प्रदान करने वाला है। इस आश्रम में गोकुलानन्द नामक शिष्य है जो धीरव्रती है। गोपिलानन्द नामक शिष्य है जो कर्मप्रिय है तथा गुणानन्द नाम का शिष्य है जो सर्वदा हँसमुख है। इसके अतिरिक्त अन्य भी शिष्य है जो सत्य मार्ग का आलिंगनकर तत्त्वार्थ को चाहने वाले हैं। आश्रम की यह मुद्रा मूल तत्त्व का बोध कराने वाली है। इस परिवर्तनशील संसार में मुद्रा ही सनातनी है। गुरु पद कमल की सेवा में ब्रह्मचर्य की प्राप्ति होती है जब ब्रह्मचर्य प्राप्त हो जाता है तब दिव्य साधना आरम्भ होती है, जो सुलभतया फल देने वाली होती है। गंगापुत्रावदानम् में शिष्य निगमानन्द ने युद्धक्षेत्र में भी गुरु के मुख से शास्त्र के तत्त्व को पाया–

गुरुसेवाव्रती धीरो ब्रह्मचर्ये प्रतिष्ठितः।
युद्धक्षेत्रेऽपि शास्त्राणां तत्त्वमाप गुरोर्मुखात्[6] ।।

गुरु अपने आश्रम में रसालकुंजों में (बैठे हुये) अपने शिष्यों को ब्राह्माण्डभाण्ड के गूढ़ रहस्यों को समझाते हुये अपना भाव अभिव्यक्त कर रहे हैं, कि जो गूढ़ तत्त्व श्रुति स्मृतियों के द्वारा प्रतिपादित है, उस गूढ़तत्त्वों को सुशिष्य अपने गुरु से स्वल्प श्रम से ही प्राप्त कर लेता है। वस्तुतः इस धरती पर गुरू की समता कोई नहीं पा सकता। सुशिष्य को दी गयी विद्या सफल होती है और उससे अलग शिष्यों को यदि विद्या दी जाये तो गुरु का ही जनापवाद होता है अर्थात् सुशिष्य को विद्या देकर गुरु यश को प्राप्त करता है और कुशिष्य को विद्या देकर गुरु निन्दा का पात्र हो जाता है। हमारा यह जीवन जड़ एवं अनित्य है। जिस प्रकार पार्थ ने कृष्ण के रूप को देखा अर्थात् जैसे अर्जुन ने कृष्ण को देखा या अपने पुत्र के मुख को यशोदा ने देखा उसी प्रकार सुन्दर शिष्यों में वन्दनीय निगमानन्द अपने गुरु को देखकर विशाल आत्मा वाला सभी संशयों से रहित हो गया।

आधुनिक युग में पाश्चात्य के बढ़ते प्रभाव से नष्ट होते भारतीय संस्कृति को देखते हुए कवि के हृदय में विषाद के भाव उत्पन्न होते हैं। वैदिककालीन भारतीय संस्कृति में नारी को उच्चतम स्थान प्राप्त है। चाहे कन्या रूप में हो या भार्या रूप में, भगिनी रूप में हो या माता रूप में प्रारम्भ से ही नारी सर्वत्र पूजनीय और श्रेष्य मानी गई है मनुस्मृति में भी कहा गया है–

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता[7]।

समकालीनता पर आधारित यह महाकाव्य गंगापुत्रावदानम् प्राचीन शिक्षा व्यवस्था को दर्शाते हुए आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में नारी प्रारम्भ से ही देवी रूप में प्रतिष्ठित है एवं प्राचीन भारतीय वैदिक समाज में पुत्र के समान ही पुत्री को भी आदर, मान, स्नेह एवं दुलार दिया जाता है[8]। तैत्तिरीय और मैत्रायणी संहिता में कन्याओं की संगीत–नृत्य में अभिरूचि का भी वर्णन किया गया है। सभी ज्ञान गुरु–शिष्य के संबंध कन्याएं भी विद्यार्थी जीवन में 'निगमानन्द' के समान ही प्राप्त करती हैं। शतपथ ब्राह्मण में स्त्री के उपनयन संस्कार और ब्रह्मचर्य जीवन का स्पष्ट उल्लेख मिलता है[9]। जो गूढ़ तत्त्व श्रुति स्मृतियों के द्वारा प्रतिपादित है। उस सोलह–सत्रह वर्ष की आयु तक शिक्षा प्राप्त करने वाली कन्याओं हेतु सद्योवधू और आजीवन शिक्षा प्राप्त करने वाली कन्याओं हेतु ब्रह्मवादिनी का प्रयोग भारतीय वैदिक साहित्य में दृष्टिगोचर होता है।

इस महाकाव्य में निगमानन्द की शिक्षा जिस प्रकार हुयी है। वह शिक्षा वैदिककालीन शिक्षा के समान थी। जैसा गुरु और शिष्य का सम्बन्ध वैदिक काल में था वैसा ही सम्बन्ध निगमानन्द का अपने गुरु के प्रति है। इस प्रकार से हम कह सकते है कि 'गंगापुत्रावदानम्' में वर्णित शिक्षा व्यवस्था उत्तम है।

पार्थो यथा पश्यति कृष्णरूपं
सुताननं वाऽथ यथा यशोदा।
तथा गुरुं वीक्ष्य सुशिष्यवन्द्योऽ–
प्यसंशयोऽभूद् विशदान्तरात्मा[10]।।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1.1 मूल संदर्भ

1. डॉ0 निरंजन मिश्र; प्रथमम् संस्करण–2013, गंगापुत्रावदानम्, मातृसदनम् प्रकाशकः हरिद्वारम्।
2. डॉ0 निरंजन मिश्र; प्र0 सं0–2016, ग्रन्थिवन्धनम्, सत्त्वम् पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
3. सं0 शैलेश कुमार तिवारी; 2016, गंगापुत्रावदानम्, सत्यम पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
4. शोध चेतना; अक्टूबर–दिसम्बर 2015, त्रैमासिक अन्तर्राष्ट्रीय रिसर्च जर्नल, वॉल्युम–6।

1.2 सहायक सन्दर्भ ग्रन्थ

1. आनंद कुमार पाठक; प्रथम सं0–2004, ईशावास्योपनिषद् एस0के0 पब्लिशर्स, बड़ा बाजार बरेली, पृ0–19
2. निरंजन मिश्र; प्रथमम् संस्करण–2013, गंगापुत्रावदानम् 5.45, मातृसदनम् प्रकाशकः हरिद्वारम्, पृ0–75
3. निरंजन मिश्र; प्रथमम् संस्करण–2013, गंगापुत्रावदानम् 5.46, मातृसदनम् प्रकाशकः हरिद्वारम्, पृ0–75
4. निरंजन मिश्र; प्रथमम् संस्करण–2013, गंगापुत्रावदानम् 6.32, मातृसदनम् प्रकाशकः हरिद्वारम्, पृ0–91
5. निरंजन मिश्र; प्रथमम् संस्करण–2013, गंगापुत्रावदानम् 5.48, मातृसदनम् प्रकाशकः हरिद्वारम्, पृ0–75–76
6. निरंजन मिश्र; प्रथमम् संस्करण–2013, गंगापुत्रावदानम् 18.5, मातृसदनम् प्रकाशकः हरिद्वारम्, पृ0–260
7. मनुस्मृति 3/56, पृ0 सं0–89, सम्पादन–सुरेश जायसवाल, साधना पब्लिशन्स दिल्ली।
8. शतपथ ब्राह्मण, 3/31/2
9. शतपथ ब्राह्मण, (4, 5, 41 – 6, 11, 3.3, 7)
10. सं0 शैलेश कुमार तिवारी; प्रथम सं0–2016, गंगापुत्रावदानम्, सत्यम पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, पृ0–34